

श्रीमती मेहरनिसा परवेज़ की कहानियों में स्त्री विमर्श

डॉ. भावनाकुमारी एस. गोहिल

शोध छात्रा एम. के. बी. युनि., भावनगर, गुजरात

सारांश

अनीतिमूलक सामाजिक प्रतिबंध के विरुद्ध एक इन्सान की स्वतंत्रता का, उसकी अस्मिता का स्वर है स्त्री विमर्श। इस आधी दुनिया को समझना वस्तुतः इतिहास के भीतर इतिहास तलाशना ही है। अभी जिसे इतिहास समझा जाता है वह वास्तव में अर्ध सत्य है। जब हर पहलू को इमानदारी से टटोला जाएगा, तब जो इतिहास निर्मित होगा वह सही अर्थ में पूर्ण इतिहास माना जाएगा। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में शुरू हुए नारी आंदोलन ने सभी भाषा साहित्य को विशेषकर हिन्दी साहित्य को काफी प्रभावित किया है। हम यह नहीं भूलते कि स्त्री विमर्श यूरोप और अमेरिका की देन है पर भारत में स्त्री विमर्श का अपना एक स्वतंत्र इतिहास रहा है जिसे अपने देश की मिट्टी से जुड़ी समस्या को ध्यान में रखकर अपने लिए पश्चिम से अलग मौलिक सिद्धांतों की आवश्यकता है और उन सिद्धांतों को ध्यान में रखकर कार्य किया जाएगा तब आगे जाकर एक दिन जरूर स्त्री की भूमिका बदलेगी। भूमिका में बदलाव के लिए पुरुष का सकारात्मक हस्तक्षेप होना जरूरी है। नारी समाज का ही हिस्सा है और समाज को मजबूत बनाने की प्रक्रिया में स्त्री का सशक्तिकरण होना सहज ही शामिल हो जाता है।

आज बाज़ारवाद की सबसे बड़ी शिकार स्त्री ही हुई है। दलित उद्धार के लिए कई सफल प्रयास हो चुके हैं पर वास्तव में स्त्री से अधिक दलित कोई नहीं है। प्रत्येक देश की परिस्थिति के अनुरूप ही वहाँ के समाज का निर्माण होता है। यह बात बिल्कुल सत्य है पर इससे जुड़ा एक भद्दा सत्य यह भी है कि हर समाज में स्त्री की स्थिति एक जैसी ही है। इस बात का ठीक ठीक अनुमान हम लेखकों के द्वारा लिखे गए साहित्य को पढ़कर लगा सकते हैं। आज सम्पूर्ण विश्वमें स्त्री विमर्श साहित्य का एक दृढ़ स्वर बनकर उभर रहा है। भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से स्त्री के सम्बन्ध में बहस छिड़ी हुई है। ऐसा क्यों हो रहा है ? इस कारण के पीछे छिपी है स्त्री की अंतरकथा। यह एक ऐसी यात्रा है जो अपने यात्री को पीड़ा पहुँचाए बिना उसे अपने गंतव्य तक पहुँचाने का दायित्व सम्भाल रही है।

मुख्य शब्द : विद्रोह, आक्रोश, विमर्श, चिंतन, कुण्ठा, अस्मिता, मुक्तिसंघर्ष, नियति.

प्रस्तावना :

यह दुर्भाग्य ही था कि हिन्दी कहानी के इतिहास के प्रारंभिक दौर में महिला कहानीकारों को अपनी पहचान न मिल सकी। वास्तव में कई ऐसी कहानी लेखिकाएँ रही जिन्होंने न केवल हिन्दी कहानी के इतिहास को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया है वरन, हिन्दी कहानी को नए आयाम दिए हैं। महिलाएँ अपने मनोभावों को स्वतंत्र ढंग से लेखन के द्वारा बहुत पहले से ही प्रस्तुत करने लगी थीं। हाँ प्रारंभिक महिला लेखन में पुरुषप्रधान समाज के अंकुश की गहरी छाप दिखाई देती है। उस समाज में रहकर भी वे अपने दर्द और अपने होने की पीड़ा को लेखन में अभिव्यक्त करना भूली नहीं थी। साहित्येतिहास की दृष्टि से ज्ञात, अल्पज्ञात और अज्ञात ऐसी कई महिला लेखिकाएँ हैं जिसने वास्तवमें हिन्दी कहानी के इतिहास को पूर्ण, बहुआयामी और विशिष्ट बनाया है।

यह वह समय था जब स्त्री सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के केन्द्र में थी। तो स्त्री का सामान्य प्रवाह से हटकर विशिष्ट कर्मक्षेत्र में आना कोई आश्चर्य की बात न होनी चाहिए। दुःख केवल यह है कि उनकी घोर उपेक्षा की गई। यद्यपि नारी की स्तुति में बहुत सी कलमें चली पर उनके संघर्ष, उनका शोषण और उत्पीड़न का यथातथ प्रामाणिक वर्णन किसी भी पौरुषेय कलम में देखने को नहीं मिलता। उसकी देह के अंदर दमित उसकी आत्मा की आवाज किसी ने नहीं सुनी। आज तक यही कहा और माना जाता रहा है कि स्त्री की दयनीय स्थिति के लिए

उसका स्त्री योनि में जन्म लेना ही जिम्मेदार है। हाँ, जन्म से स्त्रीदेह लेकर जरूर आती है परंतु स्त्रीभाव लेकर पैदा नहीं होती। उसका परिवेश ही उसे स्त्री बनाता जाता है। तभी तो फ्रांसीसी लेखिका सिमोन बॉऊवार कहती हैं कि स्त्री जन्म नहीं लेती, गढ़ी जाती है। आज भी नारी के परंपरागत रूप को ही प्रस्तुत किया जाता है। इसी रूढ़ परंपरा के परिणामस्वरूप नारी की सोच और नारी के प्रति पुरुषों की सोच में परिवर्तन का कोई चिह्न दिखाई नहीं देता। स्त्री विमर्श पर स्त्री से बेहतर कोई नहीं कह सकता और कैसे कोई पुरुष स्त्री विमर्श पर यथातथ भाव और पीड़ा को व्यक्त कर सकता है ? चाहे सुलेमिथ फायरस्टोन जैसी पश्चिमी समाज की लेखिका हो या मेहरुत्रिसा परवेज़ जैसी भारतीय लेखिका। हर स्त्री का दर्द एक जैसा ही है और हर स्त्री को अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी पड़ेगी। इस लड़ाई में दूसरों के साथ साथ स्त्री को खुद से भी प्रतिक्षण लड़ना पड़ेगा। यह अंतर्बाह्य युद्ध काफी थका देनेवाली दोहरी प्रक्रिया है पर अब जय के बिना स्वीकार नहीं अब जय के बिना विराम नहीं। भारत में नारीवाद को एकवचन में नहीं समझा जा सकता। यहाँ एक नहीं कई नारीवाद हैं, जिनकी उत्पत्ति सामाजिक, धार्मिक परम्परा और जातीय परिवेश के कारण हुई है।... कई बार इन वर्गों में नैतिकता को दूसरे ढंग से अभिव्यक्त किया जाता है। भारतीय नारी के विविध इतिहास से यह स्पष्ट है कि नारीवाद केवल पितृतन्त्र के विरोध की विचारधारा ही नहीं है वह एक ऐसा आन्दोलन है, जिसका उद्देश्य नारी के निजी और सार्वजनिक स्थान का समन्वय करना, लैंगिकता और नैतिकता के मानदण्डों की भिन्नता को समाप्त करना है। इस आन्दोलन का मकसद है स्त्री की बात को समझा जाए, उसे चुनाव की स्वतंत्रता दी जाए और अपने चुने हुए उद्देश्यों के आधार पर जीने की उसकी स्वतंत्रता को स्वीकार किया जाना चाहिए।¹

स्त्री विमर्श और भारत

स्त्री ईश्वर के ऐश्वर्य का भावात्मक स्रोत और सृष्टि का सबल आधार है। ऋग्वेद की रचना के पूर्व तक मातृसत्ता का महत्व रहा परन्तु वेदकालीन भारत में सत्ता का सूत्रधार पुरुष बन गया। स्त्री का समग्र अस्तित्व पुरुषों के द्वारा नियंत्रित होने लगा। वेदकालीन संस्कृति से ही नारी का व्यक्तिगत और सामाजिक पतन शुरू हो जाता है। स्त्री की ऐसी अवदशा के बीच भी कुछ मंत्रदृष्टा और विदुषियाँ अपना लोहा मनवा सकीं। ऋग्वेद के रचना कर्म में कई ऋषिकाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिनमें ममता, लोपामुद्रा, अदिति, दाक्षायणी, विश्ववारा, आत्रेयी, शाश्वती, आंगिरसी, अपाला, शिखण्डिनी, ब्रह्मवादिनी, घोषा, वाक्, शची, पौलोमी, इन्द्राणी, इन्द्रसुषा, मुदगलानी या इन्द्रसेना नालायनी, सर्पराज्ञी, अगस्त्य स्वसा, गोधा, रात्री भारद्वाजी, सरमा देवशुनी, इन्द्रमातरौ, अगस्त्य शिष्या, लोपयन माता, यमी, दक्षिणा प्राजापत्या, जूहब्रह्मजाया, बागाभृणी, सूर्या सावित्री, श्रद्धा कामायनी, उर्वशी आदि ऋषिकाएँ मंत्रदृष्टा और मंत्र की देवता भी हैं। यहाँ उनको जितना सम्मान मिला उतनी ही किसी एक क्षति होने पर उनकी उपेक्षा भी की गई। "शास्त्रकार ने जाने किस आधार पर यह व्यवस्था दे डाली कि पुरुष के भाग्य और स्त्री के चरित्र को मनुष्य तो क्या देवता भी नहीं जान सकते। भाग्य चाहे पुरुष का हो या स्त्री का, भविष्य के गर्भ में अज्ञात ही रहता है।... चरित्र व्यक्ति का गुण और अवगुण हो सकता है, समूचे पुरुष अथवा स्त्री समाज के विषय में कोई एक प्रस्थापना सही हो ही नहीं सकती। स्त्री-पुरुष का चरित्र भिन्न नहीं है। दोनों का मस्तक एक ही है..... त्रिया चरित्र की कोई भी परिभाषा शास्त्रकार ने नहीं दी है किन्तु परम्परा से एक ओर यदि साहित्यकारने स्त्री के गुणानुवाद से साहित्य के कोष को समृद्ध किया है तो दूसरी ओर लगभग एक स्वर से सभी पुरुष साहित्यकारोंने त्रिया चरित्र पर आक्षेप करने का व्रत निभाया है। शेक्सपियरने कहा कि - "नारी तुम्हारा नाम ही फ्रेयल्टि है"²

वैदिक काल के बाद महिला लेखन के नमूने हमें थैरी गाथा के रूप में मिलते हैं, एक नई भंगीमा के साथ। थैरी गाथाओं का संबंध भारतीय नव जागरण से है। नवजागरण मूलतः मानव की वह प्रगतिगामी चेतना है जो काल के अंतराल से विस्फोट करती है और जिसके परिणाम स्वरूप इतिहास के एक युग से दूसरे युग में एक छलांग परिलक्षित होती है। इसका संबंध धर्म, राजनीति, कला और विज्ञान से भी आगे मानवीय चेतना से भी है। थैरी

गाथाएँ इसका प्रमाण है। इन भिक्षुणियों में मात्र दरिद्र परिवार की स्त्रियाँ न होकर राजवंश की महिलाएँ भी थी। जिन्होंने प्रव्रज्या लेकर पितृसत्ता को ललकारा था। एक थेरी मुक्ता दरिद्र ब्राह्मण की कन्या थी, उसका विवाह भी दरिद्र और कुबड़े पति से हुआ। कुछ समय बाद पति से अनुमति ले प्रव्रज्या ली। उसकी मुक्ति का रंग देखिए :

मैं सुमुक्त हो गई, अच्छी विमुक्त हो गई, तीन टेढ़ी

चीजों से मैं भली विमुक्त हो गयी।

ओखली से मुसल से और अपने कुबड़े स्वामी से

मैं अच्छी मुक्त हो गयी।^४

१७७२ ई. में मेरी वॉल्टन क्राफ्ट द्वारा लिखित पुस्तक 'द विंडिकेशन ओफ द राइट्स ओफ वूमैन' जिसका हिन्दी अनुवाद 'स्त्रियों के अधिकारों का औचित्य-प्रतिपादन' के रूप में किया गया है, उसका प्रकाशन हुआ। यह पुस्तक नारी आन्दोलन के संदर्भ में महत्वपूर्ण दस्तावेज मानी जाती है। इसे कई बार स्त्रियों के अधिकारों की बाईबल कहा गया। इसमें उन्होंने रूसो के विरुद्ध लिखकर संपूर्ण युरोप का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। इसमें उन्होंने स्पष्ट किया कि स्त्रियाँ बौद्धिक मामलों में पुरुषों से कमज़ोर नहीं होती। उन्हें भी पुरुषों के समान शिक्षा दी जानी चाहिए तथा समान गुणवत्ता के आधार पर समान अधिकार भी मिलने चाहिए। उनकी पुस्तक के फ्लैप पर स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि, "अभी यह नारीवादी आन्दोलन अपनी सत्ता जमा ही रहा था जैसे १७९१ ई. में एक कानून द्वारा स्त्री शिक्षा का प्रावधान, १९७२ ई. की एक आज्ञा द्वारा स्त्रियों के लिए कई नागरिक अधिकारों का प्रावधान तथा एक कानून द्वारा तलाक की प्रक्रिया को आसान बनाने जैसे कुछ कदम उठाए ही जा रहे थे कि थर्मिडोरियन प्रतिक्रियाने स्त्री आन्दोलन की ये उपलब्धियाँ छीन ली और स्त्री एक बार फिर परिवार, शादी, तलाक, अभिभावकभाव और सम्पत्ति के अधिकारों के मामले में वैधिक तौर पर पूरी तरह से पुरुषों के अधीन हो गई।"^५ इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि जब जब भी कठिन दौर आते हैं तो अंधेरे की ताकतें मेहनतकश आम जनता के साथ ही औरतों की आधी आबादी पर भी अपनी पूरी ताकत के साथ हमला बोल देती है और न केवल उनकी मुक्ति की लड़ाई को कुचल देना चाहती है बल्कि अतीत के अनगिनत लंबे संघर्षों से अर्जित उनकी आज़ादी और जनवादी अधिकारों को भी छीन लेने पर उतारू हो जाती है। आज अपने प्रयासों को नये सिरे से संगठित करने की प्रक्रिया ने विश्वऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में नारी मुक्ति के प्रश्न और समकालीन नारी मुक्ति आन्दोलन दिशा पर विचार करते हुए हमें सर्वोपरि तौर पर उन विचारधारात्मक सैद्धांतिक हमलों का जवाब देना होगा जो नारी मुक्ति विषयक तरह-तरह के बुर्जुआ सिद्धांतों के रूप में हमारे उपर किये जा रहे हैं।

सदियों से पुरुष दर्शन स्त्री के साहस के संदर्भ में उस पर आरोप लगाता रहा है कि जो स्थान प्राप्त करना पुरुषों के लिए अत्यंत कठिन है, उसे दो अंगुलि मात्र प्रज्ञावाली स्त्री प्राप्त कर लेगी, यह संभव नहीं। परंतु स्त्री की लेखनी डरे बिना प्रवाहित होती रही। द्वितीय भारतीय नवजागरण के युग में विदेशी बैक्ट्रियन, यवनों, शकों, पल्लवों, कुषणों, शुंगों, कण्वों तथा आंध्रसातवाहन के शासन में भारतीय प्रतिभा विदेशों के संपर्क में आयी जिससे समाज की क्षयग्रस्त रुढ़ियाँ कुछ शिथिल हुई एवं नवीन जीवन-दर्शन, साहित्य तथा कला पद्धतियों का विकास हुआ। महापंडित राहुल सांकृत्यायनने अपने ग्रंथ 'संस्कृत काव्यधारा' की भूमिका में लिखा है, "प्रकृतकाल संस्कृत कविता का सुवर्णयुग है इस सुवर्णयुग के थोड़े ही से छिटें 'गाथा सप्तशती', 'सेतुबन्ध' आदि के रूप में हमारे उपर पड़े। संस्कृत और पाकृत दोनों में ही कवयित्रियों ने रचनाएँ की हैं, परन्तु उनमें से बहुत कम हमें उपलब्ध है, वह भी संग्रह ग्रंथकारों की कृपा से।" इस आधी दुनिया की दशा को समझना वस्तुतः इतिहास के भीतर इतिहास तलाशना है। हिन्दी साहित्य में विर्मश का आरंभ छायावाद काल की प्रखर कवयित्री एवं लेखिका महादेवी वर्मा से माना जाता है। १९६० के दशक में यह उफान पर आया जहाँ उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी जैसी

लेखिकाने नारी मन की व्यथा को उकेरा। आगे इस परंपरा में कई तेजस्वी लेखिकाएँ आई जिन्होंने अपने योगदान से न केवल हिन्दी साहित्य को पर स्त्री के अस्तित्व को भी तराशा है।

श्रीमती मेहरुत्रिसा परवेज़ की कहानियों में स्त्री विमर्श

वह कौन सी चीज है,

जिसके बिना सबकुछ अधूरा है।

प्यार भी, सौंदर्य भी, मातृत्व भी

सोचती है वह और पूछती है, चीखकर

प्रतिध्वनि गूँजती है घाटियों में,

मैदानों में पहाड़ों से,

समुद्र की उँची लहरों में टकराकर

आज़ादी ! आज़ादी ! आज़ादी !^६

युगों युगों से अतीत का पाखंड स्त्री का पीछा करता रहा है। धर्म, अध्यात्म, नैतिकता आदिने स्त्री के साथ जितना छल किया है उतना तो राज्यव्यवस्था ने भी नहीं किया। मानव सभ्यताने स्त्री को सृष्टि की निर्मात्री अवश्य माना पर फिर भी भेंट स्वरूप उन्हें आँसू के अतिरिक्त कुछ नहीं दे सकी। चाहे कोई भी स्थान हो या कोई भी युग हो, स्त्री शोषण से मुक्त नहीं हो पाई। स्त्री का यही मुक्तिसंघर्ष स्त्री विमर्श है। सदियों से दबाई गई स्त्री जब चीखी-चिल्लाई तब उनकी आत्मा का आक्रोश उनकी लेखनी द्वारा व्यक्त हुआ। एक ओर इन महिलाओं ने अपनी लेखनी द्वारा समाज को नई दृष्टि दी, वहीं अपने साहित्य के द्वारा तिमिर की गर्ता में तिरोहित हो चुकी स्त्री चेतना का पथ भी प्रशस्त किया। अपनी आवाज़ उठानेवाली इन महिला कथाकारों में श्रीमती मेहरुत्रिसा परवेज़ का नाम उल्लेखनीय है।

मेहरुत्रिसा परवेज़ने वेदना के स्वर में दबी नारी की आहट को सुना है और वही वेदना, छटपटाहट उनके कथा साहित्य का तथ्य बन गई। उनकी कहानियों का केन्द्रबिंदु अक्सर स्त्री और स्त्री से जुड़ी समस्याएँ ही रही हैं। उनकी कहानीमें स्त्री से जुड़ी लगभग हर एक समस्या को उठाया गया है। इन समस्याओं को स्त्री जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में देखा जाए तो वैवाहिक समस्याएँ, विवाह पूर्व एक नारी की स्थिति, कामकाजी युवती का विवाह न हो पाना, विवाह के पूर्व गर्भधारण, दहेजप्रजा, अनमेल विवाह, एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ, पत्नी पर शंका, त्रिकोणीय प्रेमसंबंध, बाँझपन, विधवा समस्या, विधवा गुहिणी के अस्तीत्व की समस्या, नपुंसक पति, विवाह विच्छेद, बलात्कार, पति द्वारा त्याग, पारिवारिक विघटन का दर्द भोगती स्त्री, प्रेमी द्वारा छल, सौतन की समस्या, पति की स्वच्छांदता, मृत संतान के प्रति मोह, दो पीढ़ी का अंतराल आदि जटिल से लेकर सूक्ष्म हर मुद्दों को उन्होंने अपनी कहानी में उठाया है। इन समस्याओं को समझने के लिए मोटे तौर पर इन्हें चार विभाग में बाँटकर देखें तो विवाह पूर्व की स्त्रियों की समस्याएँ, विवाहित स्त्रियों की समस्याएँ, वैधव्य जीवन से उत्पन्न समस्याएँ और मूलतः स्त्री होने से जुड़ी समस्याएँ ऐसे समझा जा सकता है।

विवाह पूर्व की स्त्रियों की समस्याओं में विवाह न हो तबतक की स्त्री की मानसिक अवस्था, कामबाजी महिला का विवाह न हो पाना, विवाह के पूर्व गर्भधारण, विवाहपूर्व प्रेमी की मृत्यु से स्त्री की होनेवाली मनोदशा आदि स्थितियों को समस्या के रूप में समाज के सामने रखा है। 'सिर्फ एक आदमी' की सुमी हो या 'विद्रोह' की नीना

और इनके अलावा और भी कई लड़कियाँ होगी जो परिवार की जिम्मेदारी उठाते जाने के बावजूद भी उन्हें भाग की खुशी नसीब नहीं होती। न तो वह जिम्मेदारी से पीछा छुड़ा पाती है और ना ही विवाह करके दूर जा सकती हैं। तो 'अकेले गुलमोहर' की सुधा को तो चाहते हुए भी शादी करने नहीं दिया जाता ताँकि आमदनी का ज़रिया न बंद हो जाए। 'जाने कब' की शन्नो का उम्र बितने पर भी विवाह नहीं हो पा रहा तो 'तीसरा पेंच' की नायिका एक ऐसे विवाहित पुरुष की तीसरी पत्नी बनने को तैयार है, जिसकी पहली पत्नी तलाक ले चुकी है और दूसरी पत्नी का कत्ल हो चुका है। यहाँ समाज पर बहोत बड़ा सवाल यह उठाया जा रहा है कि किसी भी स्त्री को ऐसी स्थिति तक ले जाने में कहीं समाज का तो दोष नहीं ? 'कानी बाट' की दूलेसा, जलयारी याँ 'जंगली हिरनी' की लच्छो हो या शहर की पढ़ी लिखी लड़की पुरुषों द्वारा शादी का भुलवा देकर छला जाना मानो अब तो आम सी बात हो गई है।

नीलकण्ठी कुण्ठा का अंत तो अंततः होता ही है। शिवत्व गरल पीकर कब तक शांत शिव शम्भु बनकर बैठा रह सकता है ? उसका अमृत तो शाश्वत अमरत्व की मधुरता चाहता है, जो उसकी प्रकृति है।¹⁰ स्त्रीने बुद को बहुत छलने दिया पर कभी तो अपना पैर जमाना होगा, कभी तो समाज को थप्पड़ मारना होगा। वही काम 'साल की पहली रात' की रेश्माने किया। बिना शादी बच्चे को जन्म दिया और बिना डरे डटी रही। जब बात बरदाश्त के बाहर जाती है तब यही होता है। इन कहानियों में अविवाहित महिलाओं से जुड़ी जो समस्याएँ चित्रित हुई हैं वह हृदय को उद्वेलित करनेवाली हैं। स्त्री कभी मानसिक रूप से शोषित होती है तो कभी शारीरिक स्तर पर। कभी धन की लालसा में जवान बेटियों का ब्याह नहीं किया जाता। ऐसी औरतें मानसिक रूप से कुंठित हो जाती हैं।

विवाह के बाद भी वैवाहिक जीवन कितना शुभ रहेगा यह कहना कठिन है। विवाह होने मात्र से समस्या स्त्री का पीछा नहीं छोड़ देती। हाँ विवाह पूर्व की समस्याएँ अब नहीं रहती पर अब कुछ नई समस्याएँ उसके सामने खड़ी होने लगती हैं, जैसे वैवाहिक जीवन में नीरसता आ जाना। यह बात मेहरुनिसाजीने 'खामोशी की आवाज़', 'बंजर दुपहर' और 'मुँडेरों की दुपहर' में बखूबी चित्रित की है। यह नीरसता आगे चलकर विवाह विच्छेद का कारण भी बन सकती है। अनमेल विवाह भी एक अलग समस्या है। 'फालगुनी' नायिका फालगुनी और 'आकाशनील' की नायिका तरु दोनों इस समस्या का शिकार हुई और फिर इससे बचने के लिए विवाहेतर प्रेमसम्बन्ध की दूसरी समस्या को आमंत्रित कर देती हैं। यह हमारे समाज का दोगलापन ही है। इसमें स्त्री की भूमिका भी स्त्री स्वयं तय नहीं कर सकती। हमउम्र से विवाह हो जाए तो भी पत्नी सदैव पति के संदेह का कारण बनी रहती है। कभी-कभार का संदेह फिर भी ठीक है पर अत्याधिक संदेह भी विवाह जीवन को धूमिल बना देता है और ऐसे में विवाह विच्छेद होते देर नहीं लगती। 'अयोध्या से वापसी' और 'खाली आँखों की पीड़ा' में मेहरुनिसाजीने इसी समस्या को उठाया है। जब नारी को एक मनुष्य के रूप में देखने पहचानने की शुरुआत हुई तब भी लगा कि नारी जैसे पहले गुलाम थी, उसी प्रकार तमाम आबोहवाओं, तमाम संस्कृतियों, सामाजिक व्यवस्थाओं, युद्ध या शांति में हर जगह गुलामी की जंजीर में जकड़ी आक्रामित, शोषित, पीड़ित एक वस्तु ही है।¹¹ समस्या चाहे कोई भी हो पर दोषी सिर्फ एक ही है स्त्री। स्त्रियों के मामले में कोर्ट-कचहरी की ज़रूरत ही नहीं है, समाज ही सुप्रीम कोर्ट बना बैठा है।

वैवाहिक जीवन में स्त्री को संतान सुख न मिलने की वेदना कम नहीं होती। उपर से समाज का रवैया उसे ओर अधिक पीड़ा देता है। 'बंद करों की सिसकियाँ की मोना को शुभ प्रसंगों पर शुभकार्यों से दूर रखा जाता है क्योंकि वह बाँज है। बच्चा न होना केवल स्त्री का दोष है ? पुरुष भी तो दोषी हो सकता है पर इसकी पीड़ा सिर्फ स्त्री के हिस्से ही आती है। यदि पति नपुंसक हो तब स्त्री कहाँ से बच्चा लाए ? यह बात 'रावण' में बताई गई है। एक तो वैवाहिक जीवन का सुख नहीं, बाँजपन का धब्बा भी लगेगा और उपर से पति की यातनाएँ सहती शुभी रावण को अपना आदर्श पुरुष मान लेती है। शुभी अपने पति से तलाक और प्रशांत से विवाह करना चाहती है पर उसका पति प्रशांत को रावण घोषित कर देता है। प्रशांत शुभी को सीता की तरह पवित्र मानता है और वह उसे

राम बनकर पाना चाहता है रावण बनकर नहीं तब कहानी के अंत में लेखिका लिखती है "उसके आगे ढेर-ढेर सीमा-रेखाएँ थी, जिन्हें लौंघकर सिर्फ रावण ही आ सकता था। उस दिन के बाद से उसने अपना आर्दश पुरुष राम को नहीं रावण को मान लिया था।¹⁹

विवाहविच्छेद, विवाहेत्तर, प्रेमसंबंध या अनेक विवाह भी समाज में लगा ऐसा जंग है जो सिर्फ स्त्री को ही खुरचता है। पुरुष पर केवल इतना ही धब्बा लगता है जो धोने से साफ हो जाए। 'बीच का दरवाजा' की शीला तलाक के सालों बाद भी राजन को भूल नहीं पाती। 'साल की पहली रात' की एलमा अत्यंत सुंदर, शिक्षित और समझदारी है फिर भी उसका पति उसे तलाक दे देता है। शील और राजन का प्यार भरा संसार या एलमा की समझदारी भी तलाक को रोक नहीं सकती। 'टहनियों पर धूप' की नायिका अपने पति के धोखे का शिकार होती है। वह ब्याहकर उमंगों के साथ ससुराल आती है। घर में पैर रखते ही उसकी सारी खुशियाँ तब भाँप बन जाती है जब उसे पहली बार पता चलता है कि इस घर में वह अकेली दुल्हन नहीं है। बहुत सी पत्नियों की लड़ी में उन्हें भी पिरो दिया गया है।

विवाहेत्तर प्रेमसंबंधन भारतीय समाज और साहित्य दोनों में एक संवेदनशील और विवादास्पद विषय रहा है। स्त्री विमर्श के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह केवल व्यक्तिगत आचरण नहीं परंतु पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति और लैंगिक असमानता को भी इसमें जोड़ा जाता है। पुरुष का यदि विवाहेत्तर संबंध सामने आए तो अक्सर उसमें पत्नी का दोष मानकर स्वाभाविक तरीके से नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है पर जब ऐसे ही स्त्री का कोई संबंध सामने आएगा तो उसे जघन्य कोटि का अपराध मानकर उस स्त्री को हेय नज़र से देखा जाता है। 'बीच का दरवाजा' में शीला और राजन ने एक समय प्रेमविवाह किया था परंतु उनके जीवन में चम्पा का प्रवेश होता है और इसके साथ ही प्रेम और प्रेमविवाह दोनों का अंत हो जाता है। वैवाहिक जीवन में कैसे दरार उत्पन्न होती है इस बात को लेखिकाने बखूबी सुंदर और करुण रूप से उभारा है।

वैधव्य जीवन भी स्त्री के लिए कम दुःखदायी नहीं होता। उसपर भी भारतीय समाज में विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय रही है। विधवा स्त्री को जैसे इन्सान ही नहीं समझा जाता। आज बदलते समय के साथ स्त्री भी प्रगति करी रही है पर है तो वह स्त्री ही ! अतः उससे जुड़ी मूलभूत समस्याओं में ज्यादा कुछ बदलाव देखने को नहीं मिलता। 'त्यूहार' की नायिका, 'सीढियों का ठेका' की करीमन और फातिमा, 'विराने' की राजू 'आदम और हच्चा' की उमी, 'हत्या एक दोपहर' की नूपुर और 'नया घर' की हलीमन सबने वैधव्य की पीड़ा को भोगा है। साथ ही पति के जाने के बाद का परिवार, रिश्तेदारों और समाज का उस स्त्री के प्रति बदलता व्यवहार, उपेक्षिता का भाव, अकेलेपन की व्यथा स्त्री को अधिक निचोड़ देती है। उसका जीवन मानो थम सा जाता है। भविष्य धूँधला जाता है। 'बौना मौन' की नीतू की कथा समाज की दोगली मानसिकता को खोल कर रख देती है। मृत पति की पेंशन की विधि के लिए घरेलू स्त्री जिसकी अपनी कोई आय न हो वह किस नर्क को जेलती है यह मेहरुनिसाजीने बखूबी दिखाया है। अपनी गुजर-बसर के लिए मृत पति की पेंशन का मिलना बहुत जरूरी है। नीतू को मृत पति के पेंशन की फाईल आगे बढ़वाने के लिए अधिकारियों के सामने अपनी देह रख देखी पड़ती है। क्या यही है विधवा स्त्री का सम्मान ?

स्त्री के लिए उसकी उमर, उसका रुतबा, उसकी सुंदरता, उसकी समझदारी, उसका प्यार, उसका समर्पण, उसकी नैतिकता कुछ मायने नहीं रखता मायने रखता है तो सिर्फ उसका स्त्री होना। बलात्कार, उसके साथ हो रहा लैंगिक भेदभाव, पुरुष की वासनाभरी नज़र यह सब स्त्री को ही भगुतना पड़ता है। श्रीमती मेहरुनिसा परवेज़ की कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें उनके विगत जीवन की छाया दिखाई देती है। उनकी शादी पंद्रह साल की कम उम्र में उनसे आयु में पंद्रह बीस साल बड़े व्यक्ति से करवा दी गई थी। विवाह के बाद कुछ साल तक वह माँ न बन सकी तो उन्हें बाँज का विशेषण भी दे दिया गया। सलीम का जन्म होने के बाद भी उन्हें तलाक की पीड़ा

को भी सहना पड़ा। दूसरा विवाह आंतरजातीय होने के कारण समाज की टीका और परिवार के विरोध का सामना करना पड़ा। दो विवाह के बीच का अकेलापन, पुत्र समर की अकाल मृत्यु यह सब इतना करुण और दुःखद रहा कि कोई भी स्त्री टूट ही जाती। पर लेखिकाने खुद को सम्माला और अपनी पीड़ा और भोगे यथार्थ को साहित्य के रूप में नया मोड़ दे दिया कि जो कभी आँसू तो कभी विद्रोह बन कर फूट पड़ा।

निष्कर्ष :

भारत आजादी की लड़ाई के साथ साथ आधुनिक नवजागरण की लड़ाई भी लड़ रहा था। वेदकाल से लेकर आधुनिक युग तक नारी किसी न किसी प्रकार से अपना अस्तित्व साबित करने के सफल विफल प्रयास करती रही। पाश्चात्य विश्व की हवा जब स्वदेश में मंद मंद बयार बनकर बहनी शुरू हुई तब भारत की नारी ने भी उस मंद बयार को महसूस किया, परखा और उसे हवा के तेज झोंके में तबदिल करना शुरू कर दिया। यही प्रक्रिया स्त्री विमर्श के नाम से पूरे देश के हर भाषा साहित्य में उगने लगी। जिसमें स्त्रियोंने अपना कल और आज इस उम्मीद में बयाँ किया जिससे कल बदला जा सके। स्त्रियों की यह मूहम काफी हद तक प्रामाणिक रही। आक्रोश की चिनगारीने कई झंझारों को तोड़ा और नये सिद्धांतों का आह्वान किया और कुछएक को स्थापित करने में भी सफल रही।

कोई भी विचारधारा जब वाद के रूप में बदल जाती है तो मूल सवालों से कट जाती है। जिस वजह से विचारधारा का जन्म हुआ था वह वजह धूमिल होने लगती है और विचारधारा तीव्रता और संघर्ष से हटकर रुढ़ी बनकर रह जाती है। जिसका अनुकरण करना एक फैशन बन जाता है। आकांक्षा यही है कि यह विमर्श अपने मूल से सदैव जुड़ा रहे और स्त्री की नियति को संवारता रहे। हिन्दी की कई प्रबुद्ध लेखिकाओंने यह दायित्व बखूबी निभाया। हिन्दी भाषा साहित्य में कई लेखिकाओंने स्त्री विमर्श को केन्द्र में रखकर साहित्य रचना की और स्त्री की यह कथा स्त्री के द्वारा लिखी जाने के कारण हरएक कथा स्त्री की इस लड़ाई का प्रामाणित दस्तावेज बन गई है। उसपर भी मेहरुनिसानी की कई कथाएँ उनके अपने भोगे यथार्थ का चित्र प्रस्तुत करती है। उनके जीवन के हर पड़ाव पर उन्हें काफी दुःख जेलना पड़ा और वही दुःख उनकी कहानियोंमें रिसता रहता है। स्त्री के अनछुए एहसास, सूक्ष्म भावों को उन्होंने जिस प्रकार मूर्त रूप दिया है वह प्रशंसनीय है। कुल मिलाकर स्त्री का हर रूप, हर परिस्थिति से जुड़ी समस्याओं को उजागर करने में लेखिका सफल रही हैं।

संदर्भ :

१. नारीवाद के देशज आधार, जसबीर जैन, पृ.४
२. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, सुमन राजे, पृ. ६७-८४
३. नारी : भीतर और बाहर, कमला संघवी, प्र. १४-१५
४. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, सुमन राजे, पृ.९८
५. कमलेश्वर के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श, डॉ. करुणा शर्मा, पृ. ६४
६. सम्पादकीय, अनभै, जुलाई-दिसम्बर, २०१०
७. महिला और मानवाधिकार, ए.एम.अंसारी, पृ.११
८. महिला विश्वकोश (भाग ३), रमा शर्मा, प्र.५२
९. 'फालगुनी', मेहरुनिसा परवेज़, पृ.५६